सवालों में पत्रकारिता और पत्रकारिता पर सवाल...

हिन्दी पत्रकारिता दिवस पर विशेष लेख

सवाल करती पत्रकारिता इन दिनों स्वयं सवालों के घेरे में है. पत्रकारिता का प्रथम पाठ यही पढ़ाया जाता है कि जिसके पास जितने अधिक सवाल होंगे, जितनी अधिक जिज्ञासा होगी, वह उतना कामयाब पत्रकार होगा. आज भी सवालों को उठाने वाली पत्रकारिता की धमक अलग से दिख जाती है लेकिन ऐसा क्या हुआ कि हम सवालों से किनारा कर गए. सवाल हमें दिये जाते हैं और जवाब भी पहले से तय होते हैं, इस पर कोई संशय नहीं होना चाहिए क्योंकि यह सच सब जानते हैं. जब 30 मई को हिन्दी पत्रकारिता दिवस की चर्चा करते हैं तो मन में सहज यह सवाल आता है कि पंडित जुगलकिशोर जी सवाल नहीं करते तो क्या उदंत मार्तंड आज भी हमारे स्मरण में होता ? जिस अखबार ने अंग्रेजी शासकों के नाक में नकेल डाल रखी थी, वह सवालों से दूर होता तो क्या आज हम हिन्दी पत्रकारिता पर गौरव कर सकते थे ? इसका जवाब शायद ना में होगा. उदंत मार्तंड ही क्यों, पराधीन भारत के हर उस पत्र ने अंग्रेजों से सवाल किये तो उनका दमन किया गया. इतिहास इस बात का साक्षी है. लेकिन आज स्वतंत्र भारत में ऐसा क्या होगा कि हम सवाल नहीं कर पा रहे हैं ? सवाल और पत्रकारिता एक-दूसरे के पूरक हैं. सवाल होंगे तो पत्रकारिता होगी और बिना सवाल पत्रकारिता नहीं हो सकती है.

वर्तमान समय में पत्रकारिता सवाल नहीं कर रही है बल्कि पत्रकारिता सवालों के घेरे में है. पत्रकारिता को लेकर जो सवाल दागे जा रहे हैं, वह कुछ अधकचरे हैं तो कुछ तार्किक भी. पत्रकारिता की विश्वसनीयता को लेकर सबसे पहला सवाल होता है. कदाचित कुछ अंश तक इसे सच भी मान लिया जाए तो गैर-वाजिब नहीं होगा लेकिन यह पूरा सच नहीं है. पहला तो यह कि पत्रकारिता अगर अविश्वसनीय हो गया होता तो समाज का ताना-बाना छिन्न-भिन्न हो गया होता.

पत्रकारिता समाज का प्रहरी है और वह बखूबी अपनी जिम्मेदारी को निभा रहा है. पत्रकारिता एकमात्र ऐसा स्रोत है जिससे अमर्यादित व्यवहार करने वाले, समाज की शुचिता भंग करने वाले और निजी स्वार्थ के लिए पद और सत्ता का दुरुपयोग करने वाले भयभीत रहते हैं. यह एक पक्ष है तो समाज का बहुसंख्य वर्ग जो किसी तरह अन्याय का शिकार है, व्यवस्था से पीड़ित है और उसकी सुनवाई कहीं नहीं हो रही है तब पत्रकारिता उसकी सुनता है और उसके हक में खड़ा होता है. इन दो पक्षों की समीक्षा करने के बाद यह आरोप अपने आपमें खारिज हो जाता है कि पत्रकारिता अविश्वसनीय हो चला है. अपितु समय के

साथ पत्रकारिता समाज के लिए अधिक उपयोगी और प्रभावकारी के माध्यम के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है.

इन सबके बावजूद इस बात को खारिज करने के बजाय चिंतन करना होगा कि पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर सवाल क्यों उठ रहा है ? इसका एक बड़ा कारण यह है कि अब पत्रकारिता में जो लोग आ रहे हैं, वह सामाजिक सरोकार से नहीं बल्कि व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के लिए पत्रकार बनने को बेताब हैं. जीवन भर शासन और सत्ता का सुख भोगने के बाद पत्रकार बन जाने वाले लोग सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले आर्थिक सुख को तिलांजलि देने के स्थान पर उस लाभ के साथ खड़े हैं. सालों शासन और सत्ता की चाकरी करने के बाद आज बता रहे हैं कि सिस्टम में जंग लग चुका है इसलिए उन्हें पत्रकारिता में आना पड़ा. ऐसे लोगों के कारण जमीनी पत्रकार दरकिनार कर दिये जाते हैं.

सुविधाभोगी पत्रकारों की बड़ी फौज के कारण पत्रकारिता की विश्वसनीयता पर सवाल उठ रहा है. ये वो लोग हैं जिन्होंने कभी पराडक़र जी की पत्रकारिता की कक्षा में नहीं गए, ये वो लोग हैं जो नहीं जानते कि माखनलाल चतुर्वेदी जेल के सींखचों में बंद होने के बाद भी पत्रकारिता का धर्म निभाते रहे. शायद ये लोग गणेशशंकर विद्यार्थी की शहादत से भी अपरिचित हैं. तब इन्हें इस बात का इल्म कैसे हो सकता है कि आज भी हजारों पत्रकारों का परिवार वायदे पर जी-मर रहा है. ऐसे लोगों का पत्रकारिता के मंच पर स्वागत भी है लेकिन शर्त है कि वे सेवानिवृत्ति के बाद के आर्थिक लाभ को छोडक़र आएंगे जो शायद उन्हें मंजूर नहीं होगा.

हिन्दी पत्रकारिता दिवस एक ऐसा अवसर है कि हम अपनी समीक्षा स्वयं करें कि आखिर कहां से चले थे और कहां पहुंच गए ? पत्रकारिता मिशन थी तो यह प्रोफेशन में कैसे बदली या पत्रकारिता ने मीडिया का वेश कब धर लिया और सामाजिक सरोकार की पत्रकारिता कब मीडिया इंडस्ट्री में बदल गई. आज जब हम मीडिया इंडस्ट्री की बात करते हैं तो यह विशुद्ध व्यवसाय है और व्यवसाय सरोकार को नहीं, सहकार और लाभ की कामना करता है. शासन और सत्ता को भी सहकार लेना और लाभ देना सुहाता है इसलिए मीडिया जब इंडस्ट्री है तो सब जायज है लेकिन पत्रकारिता आज भी सौफीसदी खरी है क्योंकि पत्रकारिता समाज की ताकत है. पत्रकारिता आज भी मिशनरी है और कोविड जैसे महामारी के समय समाज ने इस बात को महसूस किया. सरोकारी पत्रकारिता का केनवास छोटा दिख सकता है लेकिन उसके प्रभाव और परिणाम ही पत्रकारिता की धडक़न है.

(लेखक सुपरिचित शोध पत्रिका 'समागम' के संपादक हैं)